गीतांजलिश्री के उपन्यासों में स्त्री स्वातंत्र्य-चेतना

श्वेता पटवाल[1], मुक्तिनाथ यादव[2]

1. शोध छात्रा, हिंदी विभाग, पण्डित ललित मोहन शर्मा परिसर ऋषिकेश.
2. प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, पण्डित ललित मोहन शर्मा परिसर ऋषिकेश.

प्रस्तावना

समकालीन महिला लेखिकाओं में गीतांजलि श्री ने देश में ही नहीं अपितु पूरे विश्व में प्रसिद्धि प्राप्त की हैं। गीतांजलि श्री अपने समग्र लेखन के वैचारिक उन्मेश और अभिव्यक्ति कौशल के माध्यम से हिन्दी कथा साहित्य जगत में अपनी अलग पहचान बना चुकी हं।वह समाज की गलत मान्यताओं, रुचियों तथा परम्पराओं को चुनौती देना चाहती हैं। गीतांजलिश्री स्त्री के प्रतिबनी-बनाई हर उस धारणा के विरुद्ध हैं जो स्त्री के खिलाफ जाती हैं। उनके उपन्यासों में स्त्री अपने स्वतंत्र अस्तित्व और अस्मिता के प्रति सचेत दिखाई देती हैं।

गीतांजलिश्री ने अभी तक हिन्दी साहित्य को पांच उपन्यास दिये हैं, जो निम्न हैं -

1. माई (1993)
2. हमारा शहर उस बरस (1998)
3. तिरोहित (2001)
4. खाली जगह (2006)
5. रेतसमाधि (2018)

बीज शब्दः स्वतंत्र अस्तित्व, स्त्री-जीवन, पराधीनता, विमर्श, द्वंद्व, संयुक्त परिवार, खोखलापन।

संबन्धित साहित्य का अवलोकनः वर्तमान समय में स्त्री स्वातंत्र्य-चेतना स्त्री-विमर्श का अभिन्न हिस्सा तथा प्रमुख आयाम है। अतः इसकी सैद्धांतिकी के प्रति समझ विकसित करने हेतु सिमोन द बोउवार का 'द सेकेण्ड सेक्स', केटमिलेट का 'सेक्सुवल पालिटिक्स', वर्जिनियावुल्फ की पुस्तक 'ए रुम आफ वन'स ओन' तथा मैरीवोल्स्टन क्राफ्ट की पुस्तक ' विन्डीकेशनआ फवुमनराइट्स' का अध्ययन किया गया।

उद्देश्यः गीतांजलिश्री द्वारा अभी तक रचित समस्त उपन्यासों का परिचय प्राप्त करना इस शोध पत्र का प्रारंभिक उद्देश्य है । स्त्री स्वातंत्र्य चेतना के प्रति समझ विकसित करते हुए गीतांजलिश्री के उपन्यासों के भीतर उसकी अभिव्यक्तियों को चिन्हित कर प्रदर्शित करना प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य रहा है । हिन्दी के महिला उपन्यासकारों के बीच गीतांजलिश्री की स्थिति को स्पष्ट करना भी एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

शोध प्रविधिः प्रस्तुत शोध पत्र की रचना-प्रक्रिया के दौरान गीतांजलिश्री के पांच उपन्यासों का कई बार अध्ययन किया गया तथा उनके सूक्ष्म पहलुओं को जानने का प्रयत्न किया गया । विषयगत उपन्यासों के सबल तथा कमजोर पक्षों से अवगत हुआ गया । गीतांजलिश्री के समस्त उपन्यासों के सम्यक अनुशीलन के पश्चात विश्लेषण तथा विवेचन पद्धति के प्रयोग द्वारा मन्तव्य तक पहुंचने का प्रयास किया गया।

शोध समस्या का परिचयः स्वतंत्र अस्तित्व का अर्थ है - स्वयं की पहचानकरना । स्त्री जो पुरानी बेडियों से बंधी हुई है ,जो स्वयं की पहचान नहीं कर पाती, उसके कारणों की पड़ताल जरुरी है । सिमोन द बोउवार ने अपने उपन्यास द सेकंड सेक्स

में बताया है कि महिलाओं को कोई स्वतंत्रता नहीं है, न तो उनकी कोई अपनी पसंद है और वह कोई निर्णय नहीं ले सकती, क्योंकि सभी निर्णय पुरुषों के द्वारा लिए जाते हैं । यही बात गीतांजलिश्री के उपन्यास साहित्य में भी सर्वत्र व्याप्त है । वहां स्वतंत्र स्त्री - अस्तित्व की जद्दोजहद विद्यमान है । गीताजंलिश्री ने स्त्री जीवन के सभी पक्षों को अपने लेखन के माध्यम से उजागर किया है । इनके कथा साहित्य की स्त्री पात्र अपने जीवन के संघर्षों से जूझती रहती हैं।

'माई' गीताजंलिश्री का प्रथम उपन्यास है, जिसमें तीन पीढियों का सजीव चित्रण किया है। दादा - दादी तथा बाबू जो माई के पति हैं, माई पर अपना हुक्म चलाते हैं । बाबू के विवाहेतर संबंधों को जानते हुए भी माई स्वयं को त्याग की मूर्ति बनकर परिवार वालों की इच्छा-पूर्ति करती रहती है । माई के बच्चे सुबोध तथा सुनैना को माई का यह स्वभाव पसंद नहीं है । माई पढ़ी लिखी होने के बाद भी चुपचाप अपने ऊपर हो रहे शोषण को चुपचाप सहती हैं । दूसरी ओर सुबोध और सुनैना माई को अपने अस्तित्व की पहचान कराने की कोशिश करते हैं - "माई हमेशा झुकी रहती थी, हमें तो पता है, हम उसे शुरु से देखते आये हैं । हमारी शुरुआत ही उसकी शुरुआत है । तभी से वह एक मौन झुकी हुई साया थी । इधर से उधर फिरती, सबकी जरुरतों को पूरा करने में जुटी।"1

माई मध्यमवर्गीय परिवार में रह रही उन स्त्रियों का प्रतिनिधि चरित्र हैं , जो स्वयं कितने ही कष्ट में क्यों न हो परिवार तथा बच्चों के लिए हमेशा जूझती रहती हैं । माई, दादी, बुआ तथा सुनैना इन चारों स्त्री पात्रों में से सिर्फ सुनैना है जो समय के साथ बदल रही है । उसे माई की तरह नहीं जीना। वह अपने स्वतंत्र अस्तित्व के साथ जीना चाहती है । सुनैना कहती है - "मुझे माई नहीं बनना । मैं माई वैसे भी नही बनूंगी, मैं चाहूं भी तो माई नहीं बन सकती । वह सिफत नहीं है मुझमें । मैं माई को झटक देती हूँ।"2

'माई' उपन्यास के माध्यम से पाठक यह महसूस करता है कि किस प्रकार समाज में कोई लड़की स्त्री बनायी जाती है और किस प्रकार कोई लड़का पुरुष। धीरे-धीरे लड़की देह मात्र रह जाती है और लड़का दिमाग बन जाता है । आश्चर्य की बात तो यह है कि लड़की जिस रजस्वला की स्थिति के कारण मां बनने के लायक होती है उसी कारण वह अपवित्र मान ली जाती है। इस उपन्यास में स्त्री की पराधीनता के विरुद्ध प्रतिरोध की चेतना धीरे-धीरे विकसित होती है। मां बेटी को झुकना सिखाती है तो वही मां उसे तन कर खड़ा होने में मदद भी करती है। "'माई' में तीन पीढ़ियों की स्त्रियों की कथा है - दादी, माई और वर्तमान पीढ़ी की सुनी या सुनैना, जिसके माध्यम से भारतीय हिन्दू परिवार में स्त्री - जीवन की जटिलताओं, उसकी पराधीनता की विभिन्न दशाओं में तीन पीढ़ियों की भाषाओं और आकांक्षाओं की टकराहट के बीच स्त्री - स्वाधीनता की चेतना बनती, टूटती और पुनः निर्मित होती दिखाई देती है।"3 'माई' में पुरुष की तानाशाही का बयान किया गया है। इस उपन्यास में सामंती घर - परिवार स्त्री के लिए कारागार की तरह है, जिसमें स्त्री द्वारा कुछ जानने की उत्सुकता को निर्लज्जता माना जाता है।

गीतांजलिश्री के उपन्यास हमारा शहर उस बरस एक विमर्श मूलक राजनीतिक उपन्यास है। उपन्यास के नाम में उस बरस शब्द विशेष अर्थ लिए हुए है, जिसका संबन्ध 1992 के बाबरी मस्जिद के ध्वंस और उसके तात्कालिक प्रतिक्रियाओं से है। यह उपन्यास शरद, श्रुति और हनीफ के बीच बहस की प्रक्रिया में विकसित होता है। उपन्यास की कथा के माध्यम से सांप्रदायिकता की पहचान और उसके कारणों की पड़ताल की गई है । इस प्रक्रिया में कथा कभी वर्तमान में चलती है तो कभी अतीत में । वर्तमान समय में इतिहास के पुनर्लेखन और उसके औचित्य को सही ठहराने की इधर जो प्रक्रिया चल रही है, उसकी ओर भी इस उपन्यास में संकेत किए गए हैं।

हमारा शहर उस बरस उपन्यास के माध्यम से गीतांजलिश्री की एक गहरी आलोचना - दृष्टि उभरती है । यह दृष्टि समाज के झूठे सिद्धांतों और विश्वासों की पोल खोलती चलती है। सामाजिक रुढ़ियों और विश्वासों की यह प्रवृत्ति होती है कि वे जीवन की घोर सच्चाईयों से मुंह चुराते हैं । समाज के प्रति उसके मापदंड दोहरे होते हैं। यह उपन्यास इस प्रकार के समस्त पाखंडों पर गहरी चोट पहुंचाता है। स्त्री की तमाम पहचानों में से एक पहचान उसकी राजनीतिक अस्मिता से बनती है। यह उपन्यास स्त्री - अस्मिता के सवालों से रु-ब-रु कराता है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार इस उपन्यास को सांप्रदायिकता के संदर्भ में बुद्धिजीवी समाज की मानसिकता और उसके क्रियाकलापों की गहरी छानबीन करनेवाला किसी महिला द्वारा लिखा गया पहला उपन्यास कहा जा सकता है। यह उपन्यास सांप्रदायिकता के संदर्भ में बुद्धिजीवियों के ढुलमुल रवैये की

पहचान भी कराता है। हमारा शहर उस बरस नई पीढ़ी के अन्दर राजनीतिक चेतना के प्रवेश और प्रसार का दस्तावेज़ है ।

गीतांजलिश्री अपने तीसरे उपन्यास 'तिरोहित' में माई की भांति ही स्त्री-जीवन में संबन्धों की जटिलताओं की जांच-पड़ताल करती है । इस उपन्यास में स्त्री-जीवन की आकांक्षा और वास्तविकता का द्वंद्व और उस द्वंद्व में टूटती, बिखरती और तिरोहित होती स्त्री की करुण कथा है ।

'तिरोहित' (2001) उपन्यास में स्त्री-जीवन की परिस्थितियों के बीच से उभरते खुशी की स्थितियों के साथ-साथ यातना की स्थितियों का अभिव्यक्ति हुई है। यह उपन्यास दो चरित्रों - ललना और भतीजा को केन्द्र में रख कर व्यक्ति की इच्छाओं, वासनाओं व जीवन से किए गए किन्तु खाली रह गए दावों को उद्घाटित करता है। हिन्दी आलोचना के शिखर पुरुष प्रो. नामवर सिंह का कहना है कि मूलतः यह उपन्यास कुछ ऐसे नारी पात्रों को लेकर लिखा गया है जिसमें औरत अदृश्य है तो नहीं पर वह अदृश्य दिखाई गई है और जिसमें एक तिरोहित सी छाया है जो दिखाई पड़ती है, आवाजों के जरिए या गंध के जरिए । इसीलिए इसे तिरोहित कहा गया है । भगवान दास मोरवाल लिखते हैं कि "आखिर हमारे जीवन के कौन से अघटित दृश्य या कहिए कि ऐसे कौन से डर हैं जो अपने आपको अनावृत होने या हमारी निजता को सार्वजनिक करने से रोकते हैं । जीवन की अनुभूतियां, रोजमर्रा के स्वाद, आपसी स्पर्श, महक जैसी अदृश्य परिघटनाएं हमें क्यों अपने आप से दूर करती जाती हैं? हमें क्यों वे बिंबों के सहारे देखने को विवश करती हैं और अंततः हम अपने जीवन जगत् को सिर्फ देख, सूंघ और सुने जाने तक समेट लेते हैं। कहना न होगा कि ऐसा महज जीवनानुभवों के तेजी से सूखते स्रोतों और अपने प्रौढ़ होने के उद्दीप्त आत्मालाप के क्षरण के कारण हो रहा है। यदि ऐसा नहीं होता तो तिरोहित मां और बेटे के बीच चलने वाले मानसिक अंत द्वंन्द्व का सिर्फ आख्यान बन कर नहीं रह जाता।"4

आज भी हमारे समाज में स्त्रियों को अपने पति के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होने को कहा जाता है। हमारा समाज स्त्रियों से यह अपेक्षा करता है कि पति चाहे आपका कितना भी अपमान क्यों न करे आपको अपने पति की सेवा करनी है। तिरोहित उपन्यास में चच्चो का पति जीवन भर चच्चो का अपमान करता है। जब वह कोमा में चला जाता है तो यही समाज के लोग चच्चो को उसकी सेवा करने को कहते हैं - "पर रोना मत, बहन जी। यह तुम्हारा प्रताप कि तुम सधवा हो । जैसा भी हो पति साथ है तुम्हारे। आपके जैसी ताकत और निष्ठा आज भी अपशगुन टाल देगी।"5

दूसरी तरफ इस उपन्यास के पात्र चाचा हांगकांग में बिजनेस करते हैं । खुली सोच रखते हैं, परन्तु उन्हें अपनी पत्नी की स्वतंत्रता पसंद नहीं। यहां तक कि पत्नी का घर की खिडकियों के पास खडी भी रहे, उन्हें एतराज है ।
खिडकी पर तो नहीं खडी होती ? नहीं तो।
छत पर.....? नहीं तो।
रात उठी थी ? नहीं तो।
बिस्तर तो खाली था..... नहीं तो।'6
इस उपन्यास के माध्यम से यह बताया गया है कि पुरुष चाहे कितना भी खुली और स्वतंत्र सोच का दम भरे लेकिन स्त्री के पक्ष में आज भी उसकी विचारधारा संकीर्ण ही है ।

यदि संयुक्त परिवार से एक भी सदस्य अलग हो जाता है, तो सम्बन्धों में खालीपन आ जाता है, जिसका मार्मिक और यथार्थ चित्रण 'खाली जगह' उपन्यास में मिलता है। इस उपन्यास में एक माँ की मानसिक स्थिति को व्यक्त किया है । एक बालक तथा उसकी माँ, जो उसकी अपनी माँ नहीं है । दोनों मनोवैज्ञानिक रुप से उस आत्मीय सम्बन्ध से नहीं जी पाते जो खून के रिश्तों में जी पाते हैं । इस अपने-पराये की भावना को पूरे उपन्यास में जीते हैं । वह बालक इस मन के द्वन्द को माँ मानसिकता के रुप में व्यक्त कर सोचता है - "जहाँ माँ उतर आई मेरी माँ बनने पर उसके पहले वह उसी की माँ थी और फिर लौटी गोद में मुझे बैठा के और पिटारे में उस को सहेज के, जिसके बीच फिर आ जीवन वह फिसलती रही और गिरते हुए राह में थाम लेती कि जैसे मैं वह हूँ जो गया और वह उसे वापस खींच लेगी । मगर वह तो नहीं मैं। पर मैं भी तो नहीं मैं । ....पर इसमें क्या? वही होता है एक जीवन हम जीते हैं जो हमारा नहीं और एक जीवन हमारा जिसके हम नहीं। एक हमें नहीं अपनाता, दूसरे को हम नहीं अपनाते। खुद ही फिसलते रहते हैं अपनी ही उँगलियों के बीच में।" 7

गीतांजलिश्री का उपन्यास 'रेतसमाधि' देश में ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी चर्चा और प्रसिद्धि है। 5 अगस्त 2018 को प्रकाशित हुए रेतसमाधि को 27 मई 2022 को डेजी रॉकवेल द्वारा किए अंग्रेजी अनुवाद "टॉम्ब ऑफ सैंड" को अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिला । रेतसमाधि मध्यमवर्गीय परिवार के रिश्तों, नातों, नोक-झोंक, लगाव-अलगाव और अपनी उम्मीदों आदि को रेखांकित करता है । जिसमें एक 80 वर्षीय अम्मा अपने पति की मौत के बाद परिवार की तरफ पीठ कर बैठ जाती है, और कहती है -"नहीं नहीं मैं नहीं उठूंगी। अब तो मैं नहीं उठूंगी"8

इस उपन्यास के द्वारा गीताजंलिश्री यह बताती हैं, एक स्त्री सम्पूर्ण परिवार के होने पर भी अपने भीतर एक खोखलापन महसूस करती हैं ।

बेटी के घर का पानी भी न पीने वाले समाज में जब अम्मा कुछ समय के लिए अपनी बेटी के साथ रहती हैं, तो वह बुढिया से आजाद गुडिया बन जाती है । इस उपन्यास में मां तीन धाराओं में विभाजित होने के लिए अभिशप्त हैं -बेटे के यहां मां, बेटी के यहां मां और सरहद पार मां । इसमें हर पैराग्राफ एक नया किरदार बनाता है - चाहे घर का दरवाजा हो, दीवार, घडी, यहां तक कि रेत और हवा भी ।

निष्कर्षः गीताजंलिश्री जी ने अपने साहित्य के द्वारा यह बताया हैं की जब तक स्त्रियां स्वयं अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति चेतना संपन्न नहीं हो जातीं, उसको नहीं पहचानतीं तब तक उन को पुरानी परम्परागत बेडियों से कोई बाहर नहीं निकाल सकता। उनको इसके हेतु पुरुष मुखापेक्षी होने की आवश्यकता नहीं हैं। इसलिए स्त्रियों को स्वयं ही अपने अस्तित्व की पहचान करनी होगी।

References

1. गीतांजलि श्रीः माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1993, पृ0सं0 09
2. गीतांजलिश्रीः माई, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 1993, पृ0सं0 166
3. मैनेजरपांडेय: सरोकारों से साक्षात्कार, इंडियाटुडे (साहित्य वार्षिकी), 2002,पृ. 8-9
4. भगवानदास मोरवाल: इंडियाटुडे, 31 अक्टूबर 2001, पृ. 56
5. गीतांजलि श्रीः तिरोहित, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 2001,पृ0 सं0119।
6. गीतांजलि श्री:तिरोहित, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 2001,पृ0सं0 53।
7. गीतांजलिश्रीः खालीजगह, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 2006,पृ0सं0 123
8. गीतांजलिश्री-रेतसमाधि, राजकमल प्रकाशन, नईदिल्ली, 2018,पृ0सं0 13।